तत्त्वचिन्तन

लेखक

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पी-एच.डी., डी-लिट्

प्रकाशक

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर-302 015

फोन : 0141-2707458, 2705581

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

प्रथम संस्करण :
5 हजार
(6 अप्रैल, 2019 ई.)
नवसंवत्सर

मूल्य : **6 रुपये**

टाइपसैटिंग :
त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स,
ए-4, बापूनगर, जयपुर

मुद्रक :
रैनवो ऑफसेट प्रिंटर्स
बाईस गोदाम, जयपुर

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

1.	श्रीमती सीमा लुहाड़िया, पुणे	1100.00
2.	श्रीमती श्वेता जैन, जयपुर	1100.00
3.	श्री सुनीलकुमार शास्त्री प्रतापगढ़	1000.00
1.	श्रीमती पुष्पलता जैन (जीजीबाई) ध.प. अजितकुमारजी जैन, छिन्दवाड़ा	1000.00
2.	श्री आशीष शास्त्री, मड़ावरा	500.00
3.	श्री दीपक जैन, उदयपुर	500.00
	कुल राशि	**5,200.00**

प्रकाशकीय

जैनधर्म के निष्णेता विद्वान् तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की लेखनी से प्रसूत 'तत्त्वचिन्तन' का प्रकाशन करते हुए संस्था अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर रही है। यहाँ यह स्मरणीय है कि गद्य लेखन में तो आपको महारत हासिल है ही, पद्य लेखन के क्षेत्र में भी आपका कोई सानी नहीं है। 'पश्चाताप' खण्ड काव्य तथा 'वैराग्य' जैसे महाकाव्यों की रचना के उपरान्त दिगम्बर जैन समाज के सर्वमान्य आचार्य कुन्दकुन्द प्रणीत पंचपरमागमों पर समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड़ तथा पंचास्तिकाय महामण्डल विधान की रचना के उपरान्त योगसार व द्रव्यसंग्रह महामण्डल विधान की रचना कर आपने सभी को हतप्रभ कर दिया है।

पिछले कुछ दिनों आप काफी अस्वस्थ्य रहे, परन्तु आपका चिन्तन नहीं रुका। पंचपरमेष्ठियों का स्मरण सदा आपके चिन्तन में रहा। यही कारण है कि जैसे ही आपके हाथ में कलम उठाने की शक्ति आई आप तत्काल 'श्रमण शतक' और 'तत्त्वचिन्तन' की रचना करने बैठ गए और १५ दिन के अन्तराल में दोनों कृतियों को पूरा करके ही दम लिया। यह दोनों कृतियाँ हैं तो लघुकाय परन्तु इनने गागर में सागर भर दिया है। श्रमणों के स्वरूप और तत्त्वचिन्तन में आपने जो कुछ भी लिखा अद्भुत है और 'सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर, देखत में छोटे लगें घाव करें गंभीर' कहावत को चरितार्थ करते प्रतीत हो रहे हैं।

आपकी महत्वपूर्ण कृतियाँ धर्म के दशलक्षण, क्रमबद्धपर्याय, बारह भावना : एक अनुशीलन, परमभावप्रकाशक नयचक्र, चैतन्यचमत्कार, निमित्तोपादान, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, शाश्वत तीर्थधाम : सम्मेदशिखर, शाकाहार : जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में, आत्मा ही है शरण और गोम्मटेश्वर बाहुबली : एक नया चिन्तन आदि प्रमुख हैं।

अब तक आपके साहित्य पर तीन छात्रों ने शोधकार्य किया है – जिनमें डॉ. महावीरप्रसाद जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व' विषय पर और डॉ. सीमा जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन' विषय पर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर से तथा डॉ. राजेन्द्र संगवे द्वारा मद्रास विश्वविद्यालय से 'डॉ. हुकमचंद भारिल्ल की गद्य विधाओं में जैनदर्शन' विषय पर पी-एचडी की उपाधि प्राप्त की है।

इसके साथ ही अरुणकुमार जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य', नीतू चौधरी द्वारा 'शिक्षा शास्त्री परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन', ममता गुप्ता द्वारा 'धर्म के दशलक्षण : एक अनुशीलन' तथा शिखरचन्द जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' विषय पर लघु शोध प्रबन्ध लिखे हैं जो आपके साहित्यिक अवदान के जीवन्त दस्तावेज हैं।

आपके उक्त कार्य में पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील तथा अच्युतकान्त शास्त्री का भी महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। सुन्दर टाईप सैटिंग के लिए श्री कैलाशचन्द शर्मा तथा आकर्षक मुखपृष्ठ और प्रकाशन के लिए श्री अखिल बंसल के सहयोग हेतु आप सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

तत्त्वचिन्तन के हार्द को समझकर आप सभी तत्त्व के सच्चे स्वरूप का चिन्तन-मनन कर मोक्षमार्ग प्रशस्त करें – इसी मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ।

५ अप्रैल २०१९ ई. **– ब्र. यशपाल जैन,** प्रकाशन मंत्री

डॉ. भारिल्ल के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. समयसार : ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका ५०.००
२-६. समयसार अनुशीलन भाग १ से ५ १२५.००
७. समयसार का सार ३०.००
८. गाथा समयसार १०.००
९. प्रवचनसार : ज्ञानज्ञेयतत्त्वप्रबोधिनी टीका ५०.००
१०-१२. प्रवचनसार अनुशीलन भाग १ से ३ ९५.००
१३. कुन्दकुन्द शतक अनुशीलन २०.००
१४. प्रवचनसार का सार ३०.००
१५. नियमसार : आत्मप्रबोधिनी टीका ५०.००
१६-१७. नियमसार अनुशीलन भाग १ से ३ ७०.००
१८. छहढाला का सार १५.००
१९. मोक्षमार्गप्रकाशक का सार ३०.००
२०. वैराग्य महाकाव्य २५.००
२१. समयसार महामण्डल विधान २५.००
२२. समयसार महामण्डल विधान (गाथा सहित) ३५.००
२३. प्रवचनसार महामण्डल विधान २०.००
२४. प्रवचनसार महामण्डल विधान (गाथा सहित) २०.००
२५. नियमसार महामण्डल विधान २५.००
२६. नियमसार महामण्डल विधान (गाथा सहित) ३०.००
२७. अष्टपाहुड़ महामण्डल विधान २५.००
२८.दर्शन-सूत्र-चारित्रपाहुड़ मण्डल विधान १०.००
२९. बढ़ते कदम १०.००
३०. ४७ शक्तियाँ और ४७ नय १५.००
३१. पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व २०.००
३२. परमभावप्रकाशक नयचक्र ४०.००
३३. चिन्तन की गहराइयाँ ३०.००
३४. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ २५.००
३५. धर्म के दशलक्षण २०.००
३६. क्रमबद्धपर्याय २०.००
३७. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (पूर्वार्द्ध) २०.००
३८. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (उत्तरार्द्ध) १०.००
३९. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (सम्पूर्ण) ३०.००
४०. बिखरे मोती १६.००
४१. सत्य की खोज २५.००
४२. अध्यात्म नवनीत १५.००
४३. आप कुछ भी कहो १५.००
४४. आत्मा ही है शरण १५.००
४५. सुक्ति-सुधा १८.००
४६. बारह भावना : एक अनुशीलन १६.००
४७. दृष्टि का विषय १०.००
४८. गागर में सागर ७.००
४९. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव १२.००
५०. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन १५.००
५१. रक्षाबन्धन और दीपावली ५.००
५२. आचार्य कुंदकुंद और उनके पंचपरमागम ५.००
५३. युगपुरुष कानजीस्वामी ५.००
५४. वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका २०.००
५५. योगसार अनुशीलन २५.००
५६. योगसार महामण्डल विधान ८.००
५७. द्रव्यसंग्रह महामण्डल विधान ७.००
५८. मैं कौन हूँ ११.००
५९. रहस्य : रहस्यपूर्ण चिट्ठी का १०.००
६०. निमित्तोपादान ८.००
६१. अहिंसा : महावीर की दृष्टि में ५.००
६२. मैं स्वयं भगवान हूँ ५.००
६३-६४. ध्यान का स्वरूप/रीति-नीति ४.००
६५. शाकाहार ५.००
६६. भगवान ऋषभदेव ४.००
६७. तीर्थंकर भगवान महावीर ३.००
६८. चैतन्य चमत्कार ४.००
६९. गोली का जवाब गाली से भी नहीं २.००
७०. गोम्मटेश्वर बाहुबली २.००
७१. वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर २.००
७२. अनेकान्त और स्याद्वाद ३.००
७३. शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर ६.००
७४. बिन्दु में सिन्धु २.५०
७५. जिनवरस्य नयचक्रम १०.००
७६. पश्चात्ताप खण्डकाव्य १०.००
७७. बारह भावना एवं जिनेन्द्र वंदना २.००
७८. कुंदकुंदशतक पद्यानुवाद २.५०
७९. शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद १.००
८०. समयसार पद्यानुवाद ३.००
८१. योगसार पद्यानुवाद १.००
८२. समयसार कलश पद्यानुवाद ३.००
८३. प्रवचनसार पद्यानुवाद ३.००
८४. द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद १.००
८५. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद ३.००
८६. नियमसार पद्यानुवाद २.५०
८७. नियमसार कलश पद्यानुवाद ५.००
८८. सिद्धभक्ति १०.००
८९. अर्चना जेबी १.५०
९०. कुंदकुंदशतक (अर्थ सहित) ५.००
९१. शुद्धात्मशतक (अर्थ सहित) ५.००
९२-९३. बालबोध पाठमाला भाग २ से ३ ८.००
९४-९५. वीतराग विज्ञान पाठमाला १ से ३ १५.००
९६-९७. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ से २ १२.००
९८. भगवान महावीर और उनकी जन्मभूमि ३.००
९९. समाधिमरण या सल्लेखना ५.००
१००. ये है मेरी नारियाँ ५.००

डॉ. भारिल्ल पर प्रकाशित साहित्य

१. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल (अभिनंदन ग्रंथ) १५०.००
२. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : व्यक्तित्व और कृर्तत्व - डॉ. महावीरप्रसाद जैन ३०.००
३. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य ह्न अरुणकुमार जैन १२.००
४. डॉ. भारिल्ल के साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन - अखिल जैन बंसल २५.००
५. गुरु की दृष्टि में शिष्य ५.००
६. मनीषियों की दृष्टि में : डॉ. भारिल्ल ५.००
७. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन ह्न सीमा जैन २५.००

प्रकाशनाधीन

१. शिक्षाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन ह्न नीतू चौधरी
२. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व ह्न शिखरचन्द जैन
३. धर्म के दशलक्षण एक अनुशीलन ह्न ममता गुप्ता

तत्त्वचिन्तन

(हरिगीत)

निज आत्मा को जानकर पहिचानकर निज आत्मा।
निज आतमा का ध्यान धर जो हो गये परमातमा।।
वे वीतरागी सर्वज्ञानी हितंकर सब लोक के।
श्री ऋषभ से वीरान्त तक चौबीस तीर्थंकर हुये।। १।।

उनने जगत के सामने जिस तत्त्व को प्रस्तुत किया।
सुख शान्तिमय जिस वीतरागी मार्ग को प्रस्तुत किया।।
वह अहिंसक मार्ग जग में आज भी विद्यमान है।
और उसको समझना भी एकदम आसान है।। २।।

ऋषभ से वीरान्त तक नमकर सभी को भाव से।
उनके बताये मार्ग को उत्साह से अतिचाव से।।
निजचित्तशुद्धि के लिये अत्यन्त निर्मल भाव से।
तत्त्वचिन्तन कर रहा हूँ सहज ही सद्भाव से।। ३।।

यदि पढ़े कोई चाव से गहराई से अध्ययन करे।
पठन-पाठन करे मन से भाव से चिन्तन करे।।
और उसको लाभ हो तो होय मेरा चित्त भी।
प्रसन्न है हे बंधुवर! हम सभी अनुमोदन करें।। ४।।

जीव और अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा।
अर मोक्ष ये सब तत्त्व हैं अर अर्थ हैं तत्त्वार्थ हैं।।
इनका विमल श्रद्धान दर्शन ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।
और दर्शन ज्ञानमय निज में रमणता ध्यान है।। ५।।

पुण्य एवं पाप भी तत्त्वार्थ में आते रहे।
पुण्य एवं पाप आस्रव बंध के ही भेद हैं।।
पुण्य आस्रव पाप आस्रव इसतरह से बंध में।
हम पुण्यबंधरु पापबंधरु भेद करते रहे हैं।। ६।।

यद्यपि षट्द्रव्यमय सारा जगत ही ज्ञेय है।
किन्तु सब परद्रव्य केवल ज्ञेय केवल ज्ञेय हैं।।
आत्मा के विकारी परिणाम आस्रव बंध भी।
रे पुण्य एवं पाप भी तो ज्ञेय हैं पर हेय हैं।। ७।।

मुक्ति-संवर-निर्जरा ये ज्ञेय हैं उपादेय हैं।
है ज्ञेय अपना आत्मा श्रद्धेय है अर ध्येय है।।
निज आतमा में अपनपन सम्यक्त्व है श्रद्धान है।
निज आतमा में रमणता ही आतमा का ध्यान है।। ८।।

श्रद्धान एवं ध्यान ही तो मुक्तिमग में मुख्य हैं।
निज आतमा की साधना आराधना ही मुख्य हैं।।
अरे आस्रव बंध तो दुखकरण हैं दुखरूप हैं।
अशुचि हैं विपरीत हैं अर भवभ्रमण के रूप हैं।। ९।।

अरे आस्रव-बंध तो भवरूप हैं भवकूप हैं।
अरे इनके बंधनों में फंस रहे चिद्रूप हैं।।
पाप आस्रव पुण्य आस्रव बंध के ही हेतु हैं।
यदि बंध से है छूटना तो मोह इनका छोड़िये।। १०।।

पुण्य को भी पापवत् ही हेय कहकर आपने।
पुण्य का अपमान प्रियवर कर दिया है आपने।।
संसार में सुख-शांति दाता स्वर्गदाता पुण्य है।
परम्परा से कहें तो अपवर्ग दाता पुण्य है।। ११।।

आस्रव हैं हेय एवं बंध भी जब हेय हैं।
मुक्तीरमा की प्राप्ति में इनका ना रंच प्रदेय है।।
जब सभी आस्रव हेय हैं सब बंध भी जब हेय हैं।
पुण-पाप उनके भेद हैं अतएव वे भी हेय हैं।। १२।।

मिथ्यात्व अविरति प्रमाद अर कषाय एवं योग ये।
सब स्वयं आस्रव भाव हैं अर बंध के सब हेतु हैं।।
पुण्य एवं पाप सब बस इन्हीं भावों से बंधे।
क्योंकि ये सब भाव ही तो बंध के कारण कहे।। १३।।

कर्मबंधन होय इनसे कर्म ना इनसे कटें।
बंध के ये पाँच हेतु पुण्य भी इनसे बंधे।।
बंध के जो हेतु वे सब मुक्तिमग के हेतु ना।
मुक्ति के हैं हेतु जो वे बंध के हों हेतु ना।। १४।।

जिन्हें मुक्ति चाहिये वे बचें आस्रव-बंध से।
वे बचें सबसे पूर्णतः सब तरह के संबंध से।।
कोई किसी के कुछ नहीं हम भी किसी के कुछ नहीं।
और कोई किसी से भी कभी जुड़ सकते नहीं।। १५।।

सभी द्रव्यों में परस्पर वज्र की दीवाल है।
कोई किसी का कुछ करे इकदम असंभव बात है।।
स्वयं में रह आत्मा यह जान सकता सभी को।
क्योंकि सबको जानना इसका स्वभाविक भाव है।। १६।।

सभी अपने में रहें सब स्वयं में ही परिणमें।
हैं अपरिणामी तत्वतः परिणमन हो पर्याय में।।
जीव बदले स्वयं में पर वह अजीव नहीं बने।
जीव रहकर जीव सब ही निरन्तर बदला करें।। १७।।

बदलकर भी न बदलना आतमा का भाव है।
ना बदलकर भी बदल जाना यही आत्मस्वभाव है।।
अपेक्षा समझे बिना कुछ भी समझ ना आयेगा।
अपेक्षा के समझते सब समझ में आ जायेगा।। १८।।

शुद्ध और अशुद्ध जग में दो तरह के भाव हैं।
अशुद्ध भी हैं दो तरह के शुभ-अशुभ के भेद से।।
शुद्ध बंधन काटते अर शुभाशुभ बंधन करें।
जो भाव बंधन करें उनको मुक्तिमग कैसे कहें?।। १९।।

शुद्ध कहते हैं जिनेश्वर वीतरागी भाव को।
अशुद्ध कहते हैं जिनेश्वर रे शुभाशुभ राग को।।
वीतरागी भाव से ही कर्म के बंधन कटें।
अर शुभाशुभभाव तो पुण-पाप का बंधन करें।। २०।।

पुण–पाप से होता निरन्तर चतुर्गति में परिभ्रमण।
पुण–पाप से हों पार जब, तब रुके जग का परिभ्रमण।।
हो धर्मबुद्धि पुण्य में भवमूल मिथ्याभाव है।
वीतरागीभाव हो तो भवजलधि से पार है।। २१।।

रतनत्रय के भाव ही तो वीतरागी भाव हैं।
अर शुभाशुभ भाव तो मिथ्यात्व और कषाय हैं।।
मिथ्यात्व और कषाय मुक्तिमार्ग हो सकते नहीं।
अर वीतरागीभाव से पुण्य–पाप बंध सकते नहीं।। २२।।

पुण्य में उपादेय बुद्धि स्वयं मिथ्याभाव है।
बंध करने योग्य है – यह भयंकर मिथ्यात्व है।।
बंध चाहे पुण्य का या पाप का हो जानलो।
एक–से हैं हेय इनकी सत्यता पहिचान लो।। २३।।

पुण्य बेड़ी स्वर्ण की अर पाप बेड़ी लोह की।
बेड़ी तो बंधन रूप चाहे स्वर्ण की या लोह की।।
पुण्य की अनुकूलता है लुभाती इस जीव को।
अत्यन्त गहरे भवजलधि में डुबाती इस जीव को।। २४।।

पुण्य से अधिकांशतः भवभोग सामग्री मिले।
और उसके भोगने से पाप का ही बंध हो।।
इसतरह यह पुण्य बदले पाप में सम्पूर्णतः।
रे पाप की प्रतिकूलता, पुण्यात्मा को प्राप्त हो।। २५।।

घातिया सब पाप हैं पुण्य-पाप का यह भेद तो।
अघातियों में हो सदा जो फले बस संयोग में।।
संयोग हैं सब निरर्थक रे क्योंकि वे परद्रव्य हैं।
इक द्रव्य दूजे द्रव्य में कुछ कभी कर सकता नहीं।। २६।।

पुण्य का हो उदय तो अनुकूल हों संयोग सब।
पाप का हो उदय तो प्रतिकूल हों संयोग सब।।
परद्रव्य की अनुकूलता-प्रतिकूलता से धर्म का।
संबंध कुछ भी है नहीं जिनदेव ने ऐसा कहा।। २७।।

अनुकूलता-प्रतिकूलता को भोगने का भाव तो।
भोग ही है इसलिये वे धर्म हो सकते नहीं।।
हेयबुद्धिपूर्वक रे त्यागने का भाव तो।
धर्म ही है इसलिये स्वीकार करना चाहिये।। २८।।

विकल्पों का शमन होना वीतरागी भाव है।
अर शुभाशुभभाव तो बस विकल्पों का जाल है।।
निर्विकल्पक वीतरागीभाव निश्चय धर्म है।
उपयोग का निज आत्मा में लीन होना मर्म है।। २९।।

पुण्योदयों से प्राप्त जो अनुकूल सब संयोग हैं।
उन सभी के संयोग को कहते जगत में परिग्रह।।
परिग्रह है पाप सारा जगत जाने बात यह।
इसतरह तो पाप भी है प्राप्त होता पुण्य से।। ३०।।

पुण–पाप दोनों कर्म क्योंकि कर्म की सन्तान हैं।
जो कर्म हैं वे कर्मनाशक धर्म हो सकते नहीं।।
निष्कर्म होने के लिये हो धर्म की आराधना।
धर्म की आराधना हो आत्मा की साधना।। ३१।।

कर्मबंधन काटने को कर्म ही करते रहे।
कर्म ही करते रहे तो कर्म ही बंधते रहे।।
वीतरागी भाव ही है धर्म – यह जाना नहीं।
पुण्य भी है पाप उसको पाप सम माना नहीं।। ३२।।

पाप को तो पाप कहता जगत में सम्पूर्ण जग।
पर विरल ज्ञानी जन कहें कि पुण्य भी तो पाप है।।
स्पष्ट शब्दों में कही यह बात श्री जोइन्दु ने।
जोगसारु ग्रन्थ में जोइन्दु मुनिवरदेव ने।। ३३।।[१]

और प्रवचनसार में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने।
स्पष्ट शब्दों में कहा है प्रथम ही अधिकार में।।
पुण्य–पाप में अन्तर नहीं है जो न माने बात ये।
संसार–सागर में भ्रमे मद–मोह से आच्छन्न वे।। ३४।।[२]

पुण्य में से धर्मबुद्धि छूटना ही चाहिये।
पुण्य हो, पर धर्मबुद्धि छूटना ही चाहिये।।
पुण्य तो बस पुण्य है पर उसे शिवमग मानना।
मिथ्यात्व है – इस बात को तो जानना ही चाहिये।। ३५।।

१. योगसार दूहा–७१, २. प्रवचनसार गाथा–७७

ना पुण्य है मिथ्यात्व किन्तु उसे शिवमग मानना।
मिथ्यात्व है, बस इसलिये रे मानना है छोड़ना।।
मानना है छोड़ना अर जानना है छोड़ना।
भले हो[१], पर उसे शिवमग मानना है छोड़ना।। ३६।।

मुक्तिमग में पुण्य होना सहज ही परिणाम है।
पर उसे शिवमग मानना मिथ्यात्व है अज्ञान है।।
इस सूक्ष्म अन्तर को सदा पहिचानते हैं ज्ञानिजन।
यह बात आती है नहीं अज्ञानियों के ध्यान में।। ३७।।

भव्यता के बिना यह सत् समझना संभव नहीं।
काललब्धि के बिना भी असंभव है समझना।।
यदि शेष है संसार तो फिर समझ में आता नहीं।
और सम्यक् दिशा में भी कदम उठते हैं नहीं।। ३८।।

और सच्चे देव-गुरु का योग जबतक न मिले।
अर जिनवचन के श्रवण का संयोग जबतक न मिले।।
बात तबतक समझ में यह सहज आ सकती नहीं।
समवाय हों सब सहज तब यह समझ में आ जायेगी।। ३९।।

सहजता धारण करो सब समय पर होगा स्वयं।
निज आतमा में अपनपन अर सहज ही होगा रमण।।
सहज होगा परिणमन अर सहज ही चिन्तन-मनन।
सहज हो तल्लीनता अर सहज मुक्ति में गमन।। ४०।।

१. पुण्य का अस्तित्व भले हो, पर उसे शिवमग नहीं माना जा सकता।

कर्मबंधन अवस्था संसार है दुखरूप है।[१]
और आस्रव बंध पुण्यरु पाप भव के हेतु हैं।[२]
कर्मबंधन मुक्त एवं विकारों से शून्य जो।
वह अवस्था जीव की है मोक्ष जो सुखरूप है[३]।। ४१।।

और संवर निर्जरा ही मुक्ति के कारण कहे।[४]
नवतत्त्व का वर्गीकरण इन चार तत्त्वों में किया।।
प्रथम दो हैं हेय एवं शेष दो उपादेय हैं।
यहाँ भी पुण-पाप दोनों हेय में ही आ रहे।। ४२।।

अत्यन्त है स्पष्ट फिर भी पुण्यलोभी अज्ञजन।
सुख-शान्तिदायक मानकर ही पुण्य को अपना रहे।।
वीतरागी भाव जो सच्चा धरम है लोक में।
उसे जाने ही नहीं जिनधर्म के आलोक में।। ४३।।

राग होवे किसी से भी और हो जिस रूप में।
राग तो बस आग है हो भोग में उपभोग में।।
आग फैलेगी जहाँ सब ही भसम हो जायेगा
राग फैलेगा जहाँ सुख शान्ति को खा जायेगा।। ४४।।

सर्वज्ञ भाषित वीतरागी धर्म ही जिनधर्म है।
कांक्षा बिन सहज जीवन सहजता का मर्म है।।
भोग में सुख बुद्धिपूर्वक चाह को कांक्षा कहें।
अज्ञजन नित निरन्तर ही कांक्षा में रत रहें।। ४५।।

१. संसार तत्त्व २. संसारोपाय तत्त्व ३. मोक्ष तत्त्व ४. मोक्षोपाय तत्त्व

चार तत्त्वों रूप में वर्गीकरण जो तत्त्व का।
पुण्य को उसमें लिया संसार कारण तत्त्व में।।
संसार कारण तत्त्व तो रे ग्राह्य हो सकता नहीं।
वह तो नियम से हेय है जिनदेव का ऐसा कथन।। ४६।।

अरे संवर निर्जरा तो वीतरागी भाव हैं।
पर पुण्य बंधक भाव तो बस राग के ही रूप हैं।।
शुभ राग हैं पर राग हैं वे राग के बाहर नहीं।
राग हैं तो हेय ही हैं वीतरागी धर्म में।। ४७।।

पुण्य का फल भोगते हैं ऋद्धिधारी देवगण।
वे विषयसुख को भोगते पर हैं सभी संसार में।।
भले हों वे देव पर यह देवगति संसार में।
उनको सुखी कैसे कहें पंचेन्द्रिय विषयों में रमें।। ४८।।

स्पष्ट शब्दों में लिखा है ग्रन्थ प्रवचनसार में।
सुख का कथन करते हुये प्रथम सुख अधिकार में।।
पंचेन्द्रिय विषयों में रती वे हैं स्वभाविक दुखीजन।
दुख के बिना विष विषय में व्यापार हो सकता नहीं[१]।। ४९।।

पंचेन्द्रिय विषयों में रति तो सर्वथा ही हेय है।
जिस पुण्य से यह सब मिले वह क्यों न होवे हेय रे।।
पुण्य करने योग्य है बस बात इतनी ही नहीं।
वह धर्म है, शिवहेतु है कुछ अज्ञजन ऐसा कहें।। ५०।।

१. प्रवचनसार गाथा-६४

यह बात कहते हैं कि यह जिनदेव का ही कथन है।
पर वीतरागी धर्म में यह बात कैसे चल रही?।।
जो समझते सच्चाई उनको चाहिये रोके इसे।
युक्ति से इस बात को समझायें अर प्रस्तुत करें।। ५१।।

यद्यपि ज्ञानी किसी से उलझना नहिं चाहते।
तथापि यह बात जिनमत की अलौकिक जानना।।
इसे जाने बिना जिनमत समझ में आता नहीं।
इसलिये सद्ज्ञानियों से चुप रहा जाता नहीं।। ५२।।

सद्ज्ञानियों के प्रयासों से निरन्तर चर्चित रही।
धारा-प्रवाही रूप से यह बात चलती ही रही।।
और आगे भी सदा चलती रहेगी निरन्तर।
प्रबल इसकी धार तो बहती रहेगी निरन्तर।। ५३।।

अरे दर्शनज्ञान सम्यक्चरणमय जो परिणति।
यह वीतरागी भाव ही ले जाय जो अनुपम गति[१]।।
शुद्ध है उपयोग एवं शुद्ध ही है परिणति।
इस एक निश्चय धरम से ही प्राप्त हो पंचमगति।। ५४।।

इस वीतरागी भाव की उत्पत्ति संवर जानिये।
और इसकी वृद्धि ही है निर्जरा पहिचानिये।।
और इसकी पूर्णता है मुक्ति परमानन्दमय।
उत्पत्ति वृद्धि पूर्णता सम्पूर्णता आनन्दमय।। ५५।।

१. समयसार के मंगलाचरण में सिद्ध अवस्था को अनुपमगति कहा है।

आस्रवों का रोध संवर गुप्ति समिति पूर्वक।
दशधर्म बारह भावना बाईस परिषह जीतकर।।
चारित्र धारण कर मुनीश्वर करें संवर-निर्जरा।
मुक्तिमग में पग धरें अर अन्त में मुक्ति वरें।। ५६।।

इन सभी का विशद अध्ययन जिनागम परिप्रेक्ष्य में।
इन सभी को जानना यदि जिनागम आलोक में।।
सूत्रजी[१] का और उसकी विशद टीका[२] ग्रन्थ का।
अध्ययन करें गहराई से सम्पूर्ण समताभाव से।। ५७।।

साधु हैं शुद्धात्मसेवी सहज उनकी परिणति।
क्षमा मृदुता सरलता अर सत्य शुचि उनकी गति।।
संयमित तप-त्यागमय उनके अकिंचिन भाव हैं।
निज ब्रह्म में लवलीन हैं अत्यन्त निर्मल भाव हैं।। ५८।।

अनित्यादि भावना का चिन्तवन करते सदा।
वीतरागी भाव का पोषण करें वे सर्वदा।।
दशधर्म बारह भावना को समझना गहराई से।
यदि चाहते हो तो अपेक्षित[३] ग्रन्थ का अध्ययन करें।। ५९।।

इस वीतरागी भाव से विपरीत जो-जो भाव हैं।
और आस्रव-बंध के अनुकूल जो-जो भाव हैं।।
वे शुभाशुभभाव भव के हेतु हैं भवरूप हैं।
मुक्ति के हेतु नहीं वे मुक्ति के विपरीत हैं।। ६०।।

१. तत्त्वार्थसूत्र २. सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक आदि।
३. डॉ. भारिल्ल कृत धर्म के दशलक्षण एवं बारह भावना : एक अनुशीलन ग्रन्थ का अध्ययन करें।

मुक्ति के अनुकूल तो इकदम अरागीभाव हैं।
परमार्थ दर्शन-ज्ञान निर्मलचरण समताभाव हैं।।
शुद्धपरिणतिरूप हैं अर शुद्ध ही उपयोगमय।
आनन्दमय सुख शान्तिमय बस वीतरागी भाव हैं।। ६१।।

वीतरागी भाव संवर निर्जरा के रूप हैं।
वीतरागी भाव मुक्तिमार्ग के अनुरूप हैं।।
मुक्ति में भी वीतरागी भाव रहते निरन्तर।
आतमा के भाव रहते आत्मा में निरन्तर।। ६२।।

कर्त्तापने के भार से पूरी तरह जो मुक्त हैं।
और सारे जगत से पूरी तरह निर्लिप्त हैं।।
मुक्त हैं निर्लिप्त हैं निर्भार हैं भवपार हैं।
और अपने आपके जो स्वयं ही आधार हैं।। ६३।।

जानना बस जानना बस जानते रहना सदा।
अतीन्द्रिय आनन्द में नित लीन रहना सर्वदा।।
ज्ञानमय आनन्दमय हे प्रभो! ज्ञानानन्दमय।
शान्त इकदम शान्त एवं सहज परमानन्दमय।। ६४।।

मुक्त जीवों के अरे आनन्द को कैसे कहें?
उपमान ऐसा है नहीं जो व्यक्त उसको कर सके।।
सामर्थ्य भाषा में नहीं वाणी स्वयं लाचार है।
मोक्षसुख की क्या कहें न आर है न पार है।। ६५।।

संसार सुख से अनन्ता सुख मोक्ष में जग जन कहें।
संसार में सुख है नहीं हम गुणनफल किससे करें।।
संसार का सुख सुख नहीं है दुःख का ही रूप है।
श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने ही कहा प्रवचनसार में।। ६६।।

इन्द्रिय सुख सुख नहीं दुख है विषम बाधा सहित है।
है बंध का कारण दुखद परतंत्र है विच्छिन्न है।।[१]
इस जाति का सुख मोक्ष में तो कभी हो सकता नहीं।
मोक्षसुख की जाति तो है अतीन्द्रिय आनन्दमय।। ६७।।

इन्द्रिय सुख की जाति का सुख मोक्ष में माने यदि।
तो मानना होगा हमें कि मोक्ष हो शुभभाव से।।
क्योंकि रे शुभभाव से ही प्राप्त होता विषय सुख।
यदि मोक्ष में भी वही है तो क्यों न हो शुभभाव से।। ६८।।

यदि बात यह तो क्यों कहा इस बात को जिनशास्त्र में।
है अनन्तासुख मोक्ष में संसार से होता प्रभो ।।
यदि इसका उत्तर चाहिये तो मोक्षमार्गप्रकाश[२] के।
सातवें अधिकार का अध्ययन करो गहराई से[३]।। ६९।।

मोक्षसुख की जाति को रे अज्ञजन जाने नहीं।
अतीन्द्रिय आनन्द की वे जाति पहिचाने नहीं।।
अरे सुख के नाम से वे विषयसुख ही जानते।
अतः उसको प्राप्त कर सौभाग्य अपना मानते।। ७०।।

१. प्रवचनसार गाथा - ७६ २. मोक्षमार्गप्रकाशक, ३. मोक्षमार्गप्रकाशक पृ. २३३-२३४

मोक्षसुख की जाति का अन्दाज उनको भी लगे।
मोक्षसुख की कामना उनके हृदय में भी जगे।।
इस भाव से ही ज्ञानिजन ने कहा यह व्यवहार से।
बस बात तो इतनी ही है इससे अधिक कुछ है नहीं।। ७१।।

ऐसे कथन में ज्ञानियों की भावना पहिचानिये।
रे मोक्षसुख की जाति तो अद्भुत अलौकिक जानिये।।
अरे उसका स्वाद तो रे ज्ञानिजन ही जानते।
आत्मा के अनुभवी गहराई से पहिचानते।। ७२।।

अरे उनकी होड़ में न और कोई अन्य है।
जो आतमा के मार्ग पर वे धन्य हैं वे धन्य हैं।।
आतमा की भावना भाते जो बारंबार हैं।
जो आतमा के अनुभवी उनको नमन शतबार है।। ७३।।

आतमा की भावना भाते रहें जो निरन्तर।
आतमा के गीत जो गाते रहे हैं निरन्तर।।
निज आत्मा में लीन हो जो आत्मामय हो गये।
सिद्धसुख को प्राप्त कर परमात्मामय हो गये।। ७४।।

चैतन्यमय ध्रुव आतमा तत्त्वार्थ में शिरमौर है।
वह ज्ञानमय आनन्दमय उसके समान न और है।।
स्वयं ही परिपूर्ण एवं स्वयं ही गुणवान है।
तत्त्वार्थ में है प्रथम एवं वह स्वयं भगवान है।। ७५।।

परस्पर जो विरोधी है धर्म उनका धाम है।
शक्तियों का संग्रहालय गुणों का गोदाम है।।
आनन्द का रसकंध एवं ज्ञान का घनपिण्ड है।
अनन्तबल से विभूषित है और अति परचण्ड है।। ७६।।

चण्ड है परचण्ड है घनपिण्ड है यह आतमा।
रे सन्त है भवअन्त है भगवन्त है यह आतमा।।
अरे जिसका ध्यान धर यह आतमा परमातमा।
बने यह बस वही है चैतन्यमय ध्रुव आतमा।। ७७।।

अरे इसके गीत हम गाये कहाँ तक विज्ञवर।
और इसके गुणों की महिमा बताये कहाँ तक।।
इन सप्त तत्त्वों में अरे सर्वोत्तम है आतमा।
हम स्वयं ही हैं आतमा हम स्वयं ही परमात्मा।। ७८।।

जीव पहला तत्त्व है अर मोक्ष अन्तिम तत्त्व है।
अनन्त सुखमय ज्ञानमय अर भवजलधि का अन्त है।।
चैतन्यमय इस जीव की सर्वोत्तम पर्याय है।
बस उसे पाने के लिये ही भावना है भाव है।। ७९।।

एक संवर निर्जरा मग मोक्ष जाने के लिये।
इक वीतरागी भाव ही है मोक्ष पाने के लिये।।
उपयोग की परिपूर्ण शुद्धि एकमात्र उपाय है।
बस उसे पाने के लिये ही भावना है भाव है।। ८०।।

अर शुभाशुभभाव का तो टूटना अनिवार्य है।
पाप एवं पुण्य का भी छूटना अनिवार्य है।।
संपूर्ण आस्रव बंध को भी दूर होना चाहिये।
अर आत्मा का आत्मा में रमण होना चाहिये।। ८१।।

रतन त्रय ही वीतरागी भाव हैं सम्पूर्णतः।
निज आतमा में अपनपन अर आत्मा में रमणता।।
ही वीतरागी भाव हैं ये सहज होना चाहिये।
सहज होना चाहिये बस सहज होना चाहिये।। ८२।।

सहजता ही धर्म है अर सहजता पुरुषार्थ है।
हर स्थिति में सहज रहना साधना है साध्य है।।
शान्त इकदम शान्त रहना साधना का रूप है।
विकल्पों में न उलझना निर्विकल्प स्वरूप है।। ८३।।

निर्विकल्पक भाव ही तो आतमा का ध्यान है।
आतमा के ध्यान में श्रम कभी हो सकता नहीं।।
आत्मा की साधना तो सहज ही होती सदा।
सहज एवं सरल होता साधु का जीवन सदा।। ८४।।

साधु का जीवन सदा आनन्द का ध्रुवधाम है।
श्रम नहीं उसमें अरे उसमें पूर्णतः विश्राम है।।
रे पूर्णतः विश्राम है न काम है[१] न धाम है[२]।
बस आतमा का ज्ञान है श्रद्धान है अर ध्यान है।। ८५।।

तत्त्वनिर्णयपूर्वक सब विकल्पों का शमन हो।
शांति संयम और समताभाव का आगमन हो।।
रंच भी श्रम नहीं हो बस पूर्णतः विश्राम हो।
आत्मा बस आतमा के ध्यान में ही मगन हो।। ८६।।

१. काम विकार नहीं है, तात्पर्य यह है कि स्त्री आदि का संयोग नहीं है।
२. घर नहीं है, तात्पर्य यह है कि गृहस्थी का बोझा नहीं है।

पूर्णतः निर्वृत्त हैं जो गृहस्थी के भार से।
पूरी तरह जो मुक्त हैं आभार के व्यवहार से।।
लेना नहीं देना नहीं कुछ किसी से अनुराग से।
बस जानते हैं देखते हैं वीतरागीभाव से।। ८७।।

परद्रव्य में कुछ काम ना रे क्योंकि कर सकते नहीं।
और अपने परिणमन को भी बदल सकते नहीं।।
जब काम कुछ भी है नहीं फिर श्रम कहाँ से होयगा।
श्रम के बिना ही श्रमण का जीवन सफलतम होयगा।। ८८।।

अरे अविरत समकिती से तेरहवें गुणस्थान तक।
असंख्यगुणमय निर्जरा के एकदश स्थान हैं।।[१]
है शुद्धि वृद्धि निर्जरा आनन्द वृद्धि निर्जरा।
इस तरह तो मुक्तिमग आनन्दमय होती दशा।। ८९।।

आनन्दमय आनन्दमय रे असंख्य गुण आनन्दमय।
मुक्तिमग तो निरन्तर रहता सदा आनन्दमय।।
आनन्दमय इस दशा में श्रम को कहाँ अवकाश है?।
श्रम तो सदा ही खेद को उत्पन्न करती दशा है।। ९०।।

दिगम्बरों की मुनिदशा के रूप और स्वरूप को।
दिगम्बरों के जिनागम से जानिये पहिचानिये।।
कौन ऐसी जरूरत जिसके लिये वे श्रम करें।
सभी जिम्मेदाारियों से पूर्णतः ही मुक्त हैं।। ९१।।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र, ९ अध्याय, ४५ सूत्र

कोई तरह का बोझ लेकर वे कभी चलते नहीं।
और कोई काम को वे किसी से बंधते नहीं।।
कहीं जाने की उन्हें होती नहीं जल्दी कभी।
इस जगत में किसी से भी राग वे करते नहीं।। ९२।।

जहाँ जैसी व्यवस्था हो वीतरागी भाव से।
ठहर जाते शान्ति से रहते विरागी भाव से।।
समय पर सब विधिपूर्वक निकलते आहार को।
ग्रहण करते हैं सदा जो विधिपूर्वक प्राप्त हो।। ९३।।

किसी से लेना नहीं देना नहीं है किसी को।
सभी से समभाव रखना वीतरागी भाव से।।
किसी से भी व्यर्थ की बातें कभी करना नहीं।
तत्त्वचर्चा के अलावा और कुछ करना नहीं।। ९४।।

इसतरह के मुनिवरों को कौन सा श्रम चाहिये?।
जब कहीं भी रहना नहीं तो कौन आश्रम चाहिये?।।
पढ़ना-पढ़ाना शान्ति से स्वाध्याय करना चाहिये।
और तीनों समय विधिवत ध्यान करना चाहिये।। ९५।।

आतमा की भवदुखों से मुक्ति ही बस मुक्ति है।
निर्विकल्पक समाधि में समा जाना मुक्ति है।।
अरे कुछ करना नहीं यह सब सहज होता अरे।
सहज रहना सहज रहना सहज ही रहना अरे।। ९६।।

धर्म का जो रूप है वह श्रमस्वरूप नहीं कहा।
श्रम परिश्रम रूप है जो थकावट पैदा करें।।
धर्म आतम शुद्धि है जो शुद्धि की वृद्धि करें।
आनन्द की वृद्धि करे असंख्यगुण वृद्धि करे।। ९७।।

असंख्यगुणी प्रतिपल बढ़े आनन्द की ध्रुवधार जब।
आनन्द की ध्रुवधार में श्रम का कहाँ स्थान है।।
जब नहीं करने रूप है तब व्यर्थ में श्रम क्यों करें?।
अरे श्रम से दूर रह हम धर्म में आगे बढ़ें।। ९८।।

धर्म की ध्रुवधार तो है ज्ञानमय आनन्दमय।
और संवर निर्जरा है ज्ञानमय आनन्दमय।।
अरे मुक्तिमार्ग एवं मुक्ति है आनन्दमय।
अब तो अनन्ताकाल तक आनन्द ही आनन्द है।। ९९।।

आतमा को जान लो करलो उसी में अपनपन।
उसी को निज जान लो हो जावो उसमें ही मगन।।
बस अभी से आज से आनन्द ही आनन्द है।
आनन्द है आनन्द है आनन्द है आनन्द है।। १००।।

(दोहा)

जीव तत्त्व आनन्दमय मोक्षतत्त्व आनन्द।
इनका चिन्तन-मनन भी है आनन्दानन्द।। १०१।।
आतम का चिन्तन-मनन अर आतम का ध्यान।
बना रहे नित-निरन्तर हो आनन्द महान।। १०२।।

चैत्रबदी तेरस अरे दो अपरेल उनीस।
यह चिन्तन पूरा हुआ नमो नमो आदीश।। १०३।।

– ● –

यही है ध्यान... यही है योग...

(दोहा)

अपनेपन के साथ ही निज आतम का ज्ञान।
रमो जमो बस यही है निज आतम का ध्यान।। १।।

(रेखता)

अरे निज आतम को पहिचान आतमा में अपनापन करें।
अरे अपने आतम को जान उसी में अपनेपन से जमे।।
यही है निश्चय सम्यग्दर्श यही है निश्चय सम्यग्ज्ञान।
रतन त्रय शामिल हो जाते करो यदि इक आतम का ध्यान।। २ ।।

काय चेष्टा कुछ भी मत करो और कुछ भी ना बोलो बोल।
और ना कुछ भी सोचो भाई! एक आतम में रमो अमोल।।
यही है निश्चय सम्यग्ज्ञान यही है निश्चय सम्यक् ध्यान।
यही है परम शुद्ध उपयोग यही है अद्भुत कार्य महान।। ३ ।।

यही है परम समाधीयोग यही है परमतत्व की लब्धि।
यही है आतम की संवित्ति यही है आतम की उपलब्धि।।
यही है परम भक्ति का भाव यही है निर्विकल्प आनन्द।
यही है परम समरसीभाव यही है परमशुद्ध आनन्द।। ४ ।।

यही है परम शुद्धचारित्र यही है स्वसंवेदन ज्ञान।
यही है स्वस्वरूप उपलब्धि यही है परमशुद्ध विज्ञान।।
यही है दिव्यध्वनि का सार यही है परमतत्त्व का बोध।
जगत में इसके बिन कुछ नहीं यही एकाग्र चित्त का रोध।। ५ ।।

यही एकाग्रचित्त का रोध यही है अपनेपन का बोध।
यही है उपयोगी उपयोग यही है योगिजनों का योग।।
इसी को कहते हैं सब लोग मिला है यह अद्भुत संयोग।
स्वयं को जानो मानो जमो यही है परमतत्त्व का बोध।। ६ ।।

स्वयं को जानो, जानो नहीं जानना होने दो तुम सहज।
जानने का तनाव मत करो जानते रहो निरन्तर सहज।।
अरे करने-धरने का बोझ उतारो हो जावो तुम सहज।
जानने के तनाव से रहित जानना होने दो तुम सहज।। ७ ।।

जानना होने दो तुम सहज जानने के विकल्प से पार।
और तुम हो जावो निर्भार भाड़ में जानो दो तुम भार।।
भाड़ में जाने दो तुम भार करो तुम अपने में निर्धार[१]।
यदि बनना चाहो भगवान उन्हीं-से हो जावो निर्भार।। ८ ।।

उन्हीं-से[२] हो जावो निर्भार उन्हीं-से हो जावो निर्ग्रन्थ।
चाहते हो तुम भव का अंत शीघ्र ही छोड़ो जग का पंथ।।
सहजता जीवन का आनन्द यही है परमागम का पंथ।
चलो तुम परमागम के पंथ शीघ्र आवेगा भव का अंत।। ९ ।।

शीघ्र आवेगा भव का अन्त प्रगट होगा आनन्द अनन्त।
ज्ञान-दर्शन भी होंगे नंत वीर्य भी होगा अरे अनन्त।।
अनन्तानन्द अनन्तानन्द अनन्तानन्द अनन्तानन्द।
अनन्तानन्द अनन्तानन्द अरे भोगोगे काल अनन्त।। १०।।

(दोहा)

महिमा आतमध्यान की जिसका आर न पार।
आतम आतम में रमे हो जावे भव पार।। ११ ।।

---

१. सोच समझकर निश्चित करना। २. उनके समान ही।

जिसमें मेरा अपनापन है....

(वीर)

सामान्य आतमा तो अनन्त पर मैं तो स्वयं अकेला हूँ।
मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण अन-आतम से अलबेला हूँ।।
मैं तो केवल वह आतम हूँ जिसमें मेरा अपनापन हो।
जिसमें मेरा अपनापन हो जिसमें ही मेरा सब कुछ हो।। १।।

यद्यपि अनन्तगुणधारी मैं पर-आतम का गुण एक नहीं।
यद्यपि मैं अन्य आतमा सा पर अन्य आतमा कभी नहीं।।
यद्यपि असंख्य प्रदेशी हूँ पर का प्रदेश प्रवेश नहीं।
परिणमनशील पर द्रव्यों सा पर परणति का अवशेष नहीं।। २।।

सबके समान ही गुण पर्यय सबके समान प्रदेशमयी।
सबके समान ही सबकुछ है सबके समान चैतन्यमयी।।
यद्यपि सब कुछ सबके समान पर पर से भिन्न निराला .हूँ।
सब रमें निरन्तर अपने में अपने में रमनेवाला हूँ ।। ३।।

अपने में अपनापन होना अपने में ही जमना-रमना।
अपने में स्वयं समा जाना अपने में तन्मय हो जाना।।
है धर्म यही बस इसको ही तो धर्मधुरन्धर[1] धर्म कहें।
इसको कहते हैं रत्नत्रय इसमें निज को अर्पण कर दें ।। ४।।

इसमें निज को अर्पण कर दें इसको निज का सर्वस्व गिनें।
इसको जीवन में अपना लें जीवन को बस इसमय कर दें।।
यह जीवन सच्चा जीवन है निज को इसमें अर्पण कर दें।
अब अधिक कहें क्या हे भगवन्! समभावों से अर्पण कर दें।। ५।।

शुद्धोपयोग शुधपरिणति को निश्चय रत्नत्रय कहते हैं।
अर सहचारी शुभभावों को व्यवहार रतनत्रय कहते हैं।।
तदनुकूल जड़ तन परिणति व्यवहार धर्म कहलाती है।
पर परमारथ से देखें तो वह धर्म नहीं हो सकती है ।। ६ ।।

अपने-अपने भावानुसार ज्ञानी के यह सब होता है।
अपने-अपने भावानुसार यह यथायोग्य फल देता है।।
पर मैं तो अपने शुद्धभाव का एकमात्र अधिनायक हूँ।
मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता अर मैं ही मेरा ज्ञायक हूँ।। ७ ।।

रे मैं ही मेरा ज्ञायक हूँ अर मैं ही मेरा ध्यायक हूँ।
मैं ही मेरा हूँ ज्ञेय-ध्येय मैं ही मेरा आराधक हूँ।।
मैं ही मेरा आराधक हूँ अर मैं मेरा आराध्य अरे।
मैं तो बस केवल मैं ही हूँ और साधना-साध्य अरे।।८।।

मैं पर परमेष्ठी हूँ ही नहीं निज की परमेष्ठी पर्यायें।
भी मुझसे अन्य रूप ही हैं; क्योंकि मैं तो पर्याय नहीं।।
मैं द्रव्यरूप हूँ मूलवस्तु मेरा अपनापन मुझमें है।
मैं तो बस केवल मैं ही हूँ मैं हूँ मैं हूँ बस मैं ही हूँ।।९।।

मैं परमशुद्ध निश्चय नय का, मैं परमभावग्राही नय का।
ही विषय अनोखा अद्भुत हूँ, अर मेरे इस जीवनभर का।।
निष्कर्ष मात्र बस इतना है बस मैं ही हूँ बस मैं ही हूँ।
बस मैं ही हूँ बस मैं ही हूँ बस मैं ही हूँ बस मैं ही हूँ।।१०।।

(दोहा)

मैं तो केवल एक ही स्वयं आतमाराम।
अपने में ही नित रमूँ राम आतमाराम।।११।।

– ● –

१. धर्म की धुरा को धारण करने वाले तीर्थंकरदेव

ना बदलकर भी बदलना....

(हरिगीत)

रे असंयोगीतत्त्व में संयोग कुछ करते नहीं।
संयोग भी तो सुनिश्चित हैं कहा जिनवरदेव ने।।
अपने सुनिश्चित योग में वे भी निरन्तर बदलते।
नित निरन्तर ही बदलना उनका सहज परिणाम है।। १ ।।

यद्यपि वे नित्य बदलें निरन्तर बदला करें।
सुनिश्चित परिणमन उनका स्वयं का सर्वस्व है।।
तेरे किये कुछ नहीं होता उनके सहज परिणमन में।
उनके सहज परिणमन में और गमनागमन में।। २ ।।

द्रव्य से द्रव्यान्तर ना पलटना है जिसतरह।
नित बदलना भी उसतरह उनकी सहज सम्पत्ति है।।
ना बदल कर भी बदलना होता निरन्तर नित्य ही।
बदलकर भी ना बदलना भी सहज परिणाम है।। ३ ।।

बदलकर भी ना बदलना बिना बदले बदलना।
रे बदलना ना बदलना यह वस्तु का परिणमन है।।
अपेक्षा को समझना ही एकमात्र उपाय है।
नहीं समझी अपेक्षा तो उलझना ही नियति है।। ४ ।।

यदि चाहते हो सुलझना तो अपेक्षा पर ध्यान दो।
अपेक्षा समझे बिना तुम पार पा सकते नहीं।।
स्याद्वादी जैनियों की स्याद्वादी पद्धति।
को समझना ही समझ लो बस एकमात्र उपाय है।। ५ ।।

ना बदलकर बदला करे या नहीं बदले बदलकर।
बदले न बदले जो भी हो हमको बतायें क्या करें।।
पर जो भी बदलाबदल हो उसमें हमारा भी चले।
बस बात इतनी ही है इससे अधिक हम क्या कहें?।।६।।

इस जगत का सब परिणमन इकदम सुनिश्चित जानिये।
बदलने की भावना इकदम असंभव मानिये।।
ऐसी असंभव भावना मिथ्यात्व है अज्ञान है।
जिनदेव का ऐसा कथन यह सभी मिथ्याज्ञान है।।७।।

इक द्रव्य का अन्य द्रव्य में चलता नहीं कुछ रंच भी।
यह कथन है जिनदेव का इसमें न अन्तर रंच भी।।
यह अटल सिद्धांत है इसमें किसी का क्या चले?
है ठीक इस सिद्धांत के अनुकूल अपना मन बने।।८।।

वस्तु के परिणमन में थोड़ा हमारा भी चले।
यह भावना अज्ञान है अज्ञान से हम सब बचें।।
इस भावना की पूर्ति तो तेरी कभी होगी नहीं।
त्याग ऐसी भावना सन्मार्ग पर हम सब चलें।।९।।

पर्याय का परिणमन आया सहज केवलज्ञान में।
स्वीकारना ही धर्म है यह बात रखिये ध्यान में।।
यदी हो स्वीकार तो बस पार बेड़ा जानिये।
अतः अन्तर्भाव से स्वीकार होना चाहिये।।१०।।

(दोहा)

परम सत्य की स्वीकृति अन्तर्मन से होय।
तो इस आतमराम को रे अनंतसुख होय।।११।।

– ● –

कोई किसी का क्यों करे....?

(हरिगीत)

कोई किसी का क्या करे, कोई किसी का क्यों करे?
सब द्रव्य अपने परिणमन के जब स्वयं जिम्मेवार हैं।।
जिस देह में आतम रहे, जब वही अपनी ना बने।
तब शेष सब संयोग भी अपने बताओ क्यों बने?।।१।।

एक अपना आतमा ही स्वयं अपनेरूप है।
और सब संयोग तो बस एकदम पररूप हैं।।
संयोग की ही भावना बस भवभ्रमण का हेतु है।
और अपनी भावना ही एक मुक्ति सेतु है।।२।।

संयोग बदलें निरंतर इस दु:खमयी संसार में।
उनको मिलाना असंभव है सुनिश्चित संसार में।।
संयोग होते हैं सहज[१] पर करोड़ों में एक भी।
मिल जाय तो मिल जाय रे अत्यन्त दुर्लभ जानिये।।३। ।

संयोग मिलना-बिछुड़ना ना है किसी के हाथ में।
पूरी तरह हैं सुनिश्चित सब ही अनादिकाल से।।
इस सत्य को स्वीकार करना ही सहज पुरुषार्थ है।
सहज में ही सहज रहना एक ही परमार्थ है।।४।।

बस एक सुख का मूल है निज आत्म में अपनापना।
स्वयं को पहिचानना अर स्वयं को निज जानना।।
स्वयं में ही समा जाना स्वयं में ही लीनता।
स्वयं के सर्वांग में ही स्वयं की तल्लीनता।।५।।

---

१. मनोनुकूल संयोगों का मिलना असंभव ही है। सहज रूप से कदाचित् मिल भी जावे तो करोड़ों में एकाध ही मिलता है।

यही सच्चा धर्म है अर यही सच्ची साधना।
है आत्मा की साधना अर आत्म की आराधना।।
निज आत्मा में रमणता निज आत्मा का धर्म है।
निज आत्मा के धर्म का इक यही सच्चा मर्म है।।६।।

सद्धर्म का यह मर्म है सब स्वयं में तल्लीन हों।
स्वयं की तल्लीनता से रहित जन भवलीन हों।।
भवलीन संसारी सदा भव में भटकते ही रहें।
निज आतमा के भान बिन सुख को तरसते ही रहें।।७।।

ज्ञानमय आनन्दमय यह अमल निर्मल आतमा।
सद्ज्ञान दर्शन चरणमय सुख-शान्तिमय यह आतमा।।
जो शक्तियों का संग्रहालय गुणों का गोदाम है।
आनन्द का है कंद अर आराधना का धाम है।।८।।

आराधना का धाम है सुख साधना का धाम है।
और अपनी आत्मा का एक ही ध्रुवधाम है।।
एक ही ध्रुवधाम है बस एक ही सुखधाम है।
अध्रुव सभी संयोग बस निज आतमा ध्रुवधाम है।।९।।

ध्रुवधाम में एकत्व रे ध्रुवधाम की आराधना।
ध्रुवधाम में सर्वस्व अर ध्रुवधाम की ही साधना।।
साधना आराधना आराधना अर साधना।
हे भव्यजन ! नित करो अपने आत्म की आराधना।।१०।।

(दोहा)

आतम ही ध्रुवधाम है आतम आतमराम।
आतम आतम में रमें हूँ मैं आतमराम।।११।।

– ● –